प्रकाशन हेतु अनुमोदित

छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय : बिलासपुर

रिट याचिका (सेवा) संख्या 3599 सन् 2005

याचिकाकर्ता — जी. आर. सोनी

बनाम

उत्तरवादीगण — छत्तीसगढ़ राज्य और अन्य

और

रिट याचिका (सेवा) संख्या 5125 सन् 2005

याचिकाकर्ता — जी. आर. सोनी

बनाम

उत्तरवादीगण — छत्तीसगढ़ राज्य और अन्य

निर्णय एवं आदेश हेतु दिनांक 6 मार्च, 2009 को नियत

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

सही/-

श्री सतीश के. अग्निहोत्री

न्यायाधीश

छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय : बिलासपुर

एकल पीठ : माननीय श्री सतीश के. अग्निहोत्री न्यायाधीश

रिट याचिका (सेवा) संख्या 3599 सन् 2005

याचिकाकर्ता — जी. आर. सोनी पिता श्री एस. एस. सोनी उम्र 55 वर्ष नायब तहसीलदार के पद पर दौंडी लोहारा में पदस्थ, जिला दुर्ग, निवासी नंदिनी, जिला दुर्ग (छ.ग)।

बनाम

उत्तरवादीगण

1 छत्तीसगढ़ राज्य, राजस्व विभाग सचिव राज स्व मंत्रालय द्वारा डी.के.एस. भवन, रायपुर (छ.ग.)

2 आयुक्त, रायपुर संभाग, रायपुर छ.ग.)

3 मध्य प्रदेश लोक सेवा आयोग, सचिव, लोक सेवा आयोग, इंदौर द्वारा।

4 छत्तीसगढ़ लोक सेवा आयोग, सचिव, लोक सेवा आयोग, रायपुर (छ.ग.) द्वारा ।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

उपस्थितः श्री जी.आर. सोनी, याचिकाकर्ता व्यक्तिगत रूप से उपस्थित।
श्री वाई.एस. ठाकुर, उप महाधिवक्ता राज्य/उत्तरवादीगण क्रमांक 1 एवं 2 के लिए ।
उत्तरवादी क्रमांक 3 के लिए कोई उपस्थित नहीं।
श्री अभिषेक सिन्हा, अधिवक्ता एवं श्री घनश्याम पटेल, उत्तरवादी क्रमांक 4 के लिए ।

तथा

रिट याचिका (सेवा) क्रमांक 5125 वर्ष 2005

याचिकाकर्ता — जी. आर. सोनी पिता श्री एस. एस. सोनी उम्र 56 वर्ष नायब तहसीलदार (के पद से सेवानिवृत्त) दौंडी लोहारा, जिला दुर्ग, निवासी नंदिनी, जिला दुर्ग (छ.ग)।

बनाम

उत्तरवादीगण

1 छत्तीसगढ़ राज्य , राजस्व विभाग द्वारा डी. के.एस. भवन, रायपुर (छ.ग.)

2 आयुक्त, रायपुर संभाग, रायपुर छ.ग.)

उपस्थितः श्री जी.आर. सोनी, याचिकाकर्ता व्यक्तिगत रूप से उपस्थित।
श्री वाई.एस. ठाकुर, उप महाधिवक्ता, राज्य की ओर से ।

आदेश

(दिनांक 06/02/2009 को पारित)

1. रिट याचिका (सेवा) क्रमांक 3599 वर्ष 2005 के याचिकाकर्ता ने दिनांक 15-2-2001 (अनुलग्नक ए/1) के उस आदेश को अभिखंडित करने का अनुरोध किया है, जिसके द्वारा राज्य सरकार द्वारा की गई अनुशंसा पर लोक सेवा आयोग (संक्षिप्त में "पीएससी") की स्वीकृति से, उन्हें छत्तीसगढ़ सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण एवं अनुशासन) नियम, 1966 (संक्षिप्त में "नियम 1966") के नियम 10 (vii) के प्रावधानों के अंतर्गत सेवा से अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त कर दिया गया था, साथ ही परिणामीक लाभों की मांग की गई है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

2. संक्षेप में, रिट याचिका (सेवा) क्रमांक 3599 वर्ष 2005 के तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता, जो नायब तहसीलदार के पद पर कार्यरत थे, के विरुद्ध विभिन्न आरोप लगाए गए थे और विभागीय जाँच पूर्ण होने के उपरांत याचिकाकर्ता को दिनांक 21-12-1992 (अनुलग्नक ए/2) के आदेश द्वारा सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था। याचिकाकर्ता ने एक विभागीय अपील प्रस्तुत की थी जिसमें विभिन्न आधारों पर विशेष रूप से यह कि विभागीय जाँच की कार्यवाही प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के प्रावधानों का पालन किए बिना की गई थी। अपीलीय प्राधिकारी ने दिनांक 29-11-1996 (अनुलग्नक ए/3) के आदेश द्वारा दिनांक 21-12-1992 के आदेश को अभिखंडित कर दिया और याचिकाकर्ता को सेवा में पुनः बहाल किया तथा मामले को अनुशासनात्मक प्राधिकारी के पास इस निर्देश के साथ पुनः भेजा कि अंतिम आदेश पारित करने से पहले याचिकाकर्ता को कारण बताओ नोटिस के साथ जाँच प्रतिवेदन की प्रति उपलब्ध कराई जाए। तत्पश्चात् याचिकाकर्ता को दिनांक 13-1-1997 (अनुलग्नक ए/4) को एक कारण बताओ नोटिस जारी किया गया। याचिकाकर्ता ने कई दस्तावेजों की माँग की, किंतु वे उसे उपलब्ध नहीं कराए गए। याचिकाकर्ता ने दिनांक 30-9-1997 (अनुलग्नक ए/5) को कारण बताओ नोटिस के संबंध में अपना जवाब प्रस्तुत किया। इस बीच, दिनांक 29-11-1996 (अनुलग्नक ए/3) के पुन: प्रेषण आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने राज्य प्रशासनिक अधिकरण (संक्षिप्त में "अधिकरण") के समक्ष मूल

आवेदन क्रमांक 968 वर्ष 1999 के रूप में एक आवेदन प्रस्तुत किया। अधिकरण ने दिनांक 28-7-2000 (अनुलग्नक ए/6) के आदेश द्वारा उक्त आवेदन का निराकरण करते हुए उत्तरवादीयों को निर्देशित किया कि याचिकाकर्ता की विभागीय जाँच दिनांक 28-7-2000 से 2½ माह की अवधि के भीतर पूरी की जाए। एक अवमानना याचिका दिनांक 28-7-2000 के आदेश का अनुपालन न होने के विरुद्ध अधिकरण में दायर की गई। अधिकरण ने अवमानना याचिका को स्वीकार करने के पश्चात्, उत्तरवादीयों को नोटिस जारी किया। अवमानना कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान, दिनांक 19-2-2001 को उत्तरवादीयों ने दिनांक 28-7-2000 के आदेश का अनुपालन करने हेतु अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत के लिए अधिकरण में आवेदन किया। विभागीय जाँच तदनुसार पूरी की गई। अवमानना याचिका में कार्यवाही दिनांक 2-8-2002 को समाप्त कर दी गई। परिणामस्वरूप, दिनांक 15-2-2001 का आक्षेपित आदेश पारित किया गया।

3. दिनांक 15-2-2001 (अनुलग्नक ए/1) के आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने अधिकरण के समक्ष मूल आवेदन क्रमांक 184 वर्ष 2001 दायर किया। अधिकरण के विघटन के पश्चात्, मामला इस न्यायालय में स्थानांतरित कर दिया गया और पुनः रिट याचिका (सेवा) क्रमांक 3599 वर्ष 2005 के रूप में अंकित किया गया।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

4. संक्षेप में, रिट याचिका (सेवा) क्रमांक 5125 वर्ष 2005 के तथ्य यह हैं कि इस याचिका में याचिकाकर्ता ने उत्तरवादीयों को दिनांक 21-12-1992 से 15-12-1996 तक की सेवा से बर्खास्तगी की अवधि के दौरान वेतन, बकाया राशि और भत्ते देने का निर्देश देने का अनुरोध किया है, साथ ही ब्याज की मांग की है, क्योंकि अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित दिनांक 21-12-1992 के आदेश को अपीलीय प्राधिकारी द्वारा दिनांक 15-12-1996 को अपास्त कर दिया गया था। याचिकाकर्ता ने अधिकरण के समक्ष मूल आवेदन क्रमांक 842 वर्ष 2002 दायर किया था। अधिकरण के विघटन के पश्चात्, इस याचिका को भी इस न्यायालय में स्थानांतरित कर दिया गया और इसे रिट याचिका (सेवा) क्रमांक 5125 वर्ष 2005 के रूप में पुनः अंकित किया गया।

5. दोनों रिट याचिकाओं में समान तथ्यों एवं विधिक प्रश्नों पर विचार करते हुए, इन्हें इस एक ही आदेश द्वारा एक साथ निराकृत किया जा रहा है।

6. श्री सोनी, याचिकाकर्ता, जो व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हैं, ने तर्क दिया कि आक्षेपित आदेश दिनांक 15-2-2001 (अनुलग्नक ए/1) विधि के अनुसार अवैध है क्योंकि याचिकाकर्ता को उनके द्वारा अनुरोधित सुसंगत दस्तावेज उपलब्ध नहीं कराए गए थे। आक्षेपित आदेश दिनांक 15-2-2001 अवैध है, क्योंकि विभागीय जाँच निष्पक्ष और उचित ढंग से आयोजित नहीं की गई थी, जैसा कि आक्षेपित आदेश में कहा गया है कि उसे मूल रूप से दिनांक 21-12-1992 (अनुलग्नक ए/2) के आदेश द्वारा सेवा से बर्खास्त किए जाने की अवधि से लेकर आदेश अभिखंडित किए जाने तक के वेतन और भत्तों के संबंध में लाभों की पुनर्गणना की जाएगी। परिणामस्वरूप, उन्हें दिनांक 29-11-1996 (अनुलग्नक ए/3) के आदेश के अनुसरण में पुनर्बहाल किया गया, जिसके तहत मुलभूत नियम (संक्षिप्त में "मू.नि.") 54 के प्रावधानों के अंतर्गत लाभों पर विचार किया जाना था। लोक सेवा आयोग (पी.एस.सी.) की राय का खुलासा नहीं किया गया, अतः आक्षेपित आदेश प्रारंभ से ही शून्य है। उत्तरवादीयों-प्राधिकारियों की दुर्भावना इस तथ्य से स्पष्ट है कि उन्होंने अधिकरण द्वारा मूल आवेदन क्रमांक 968 वर्ष 1999 में दिनांक 28-7-2000 को पारित आदेश के अनुसार 2½ माह की निर्धारित अवधि के भीतर विभागीय जाँच पूरी नहीं की। याचिकाकर्ता को मू.नि. 56 के तहत निर्धारित सेवानिवृत्ति से तीन माह पूर्व नोटिस जारी किए बिना ही सेवा से अनिवार्य सेवानिवृत्ति का दंड दिया गया।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

7. श्री सोनी ने आगे तर्क दिया कि जाँच में किसी प्रस्तुतिकरण अधिकारी की नियुक्ति नहीं की गई थी, अतः जाँच प्रक्रिया दोषपूर्ण है। जाँच प्रतिवेदन प्रस्तुत होने के पश्चात् दंड लगाने के प्रश्न पर याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया। याचिकाकर्ता ने अगला तर्क दिया कि राज्य सरकार द्वारा की गई अनुशंसा को स्वीकृति देने से पूर्व लोक सेवा आयोग (पी.एस.सी.) को याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर देना चाहिए था। सरकार के सचिव को भी पी.एस.सी. के पास अनुमोदन हेतु अनुशंसा भेजने से पूर्व सुनवाई का अवसर देना चाहिए था। अनिवार्य सेवानिवृत्ति केवल मू.नि. 56 के प्रावधानों के अंतर्गत ही लागू की जा सकती है, जिसमें तीन माह का कारण बताओ नोटिस एक पूर्व शर्त है। प्रतिवेदन प्रस्तुत होने के पश्चात् भी याचिकाकर्ता सुनवाई के प्रत्येक चरण में सुसंगत दस्तावेजों की माँग करने का हकदार था। श्री सोनी ने गुजरात उच्च न्यायालय के निर्णय **बी.जे. जादव बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य**[1] का अवलंब लिया है। गुजरात उच्च

[1] 2005 LAB I.C.3706

न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधिक सिद्धांत पर बाद में सर्वोच्च न्यायालय ने **भारत संघ एवं अन्य बनाम टी.वी. पटेल**[2] के मामले में विचार किया, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया कि दंड का आदेश पारित करने से पूर्व दोषी कर्मचारी को पी.एस.सी. की राय की प्रति प्रदान करना आवश्यक नहीं है।

8. इसके विपरीत, राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान उप महाधिवक्ता श्री वाई.एस. ठाकुर ने तर्क प्रस्तुत किया कि उत्तरवादी/राज्य ने प्रारंभिक सेवा समाप्ति की तिथि 21-12-1992 से पुनर्बहाली की तिथि 15-12-1996 तक की अवधि को काम नहीं तो वेतन नहीं नहीं' के रूप में माना है। श्री ठाकुर ने आगे तर्क प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता को आरोप पत्र दिनांक 30-11-1998 के साथ-साथ जाँच में प्रयुक्त सभी दस्तावेज उपलब्ध कराए गए थे। आरोप क्रमांक 1 एवं 4 आंशिक रूप से सिद्ध पाए गए थे जबकि आरोप क्रमांक 2 एवं 3 पूर्णतः सिद्ध पाए गए थे। याचिकाकर्ता ने जाँच प्रतिवेदन के संबंध में यह विवाद नहीं उठाया है कि क्या कोई भी निष्कर्ष बिना साक्ष्य के आधार पर दर्ज किया गया है अथवा जाँच प्रतिवेदन विपरीत है। याचिकाकर्ता का मामला यह है कि दूसरे कारण बताओ नोटिस के चरण में न तो याचिकाकर्ता को आवश्यक दस्तावेज अर्थात बीस सूत्री कार्यक्रम रजिस्टर, पटवारी अभिलेख, नाज़िर रजिस्टर उपलब्ध कराए गए और न ही याचिकाकर्ता को निरीक्षण की अनुमति दी गई। दूसरा कारण बताओ नोटिस याचिकाकर्ता की निर्दोषता के निष्कर्ष के संबंध में नहीं, बल्कि दंड आरोपित करने के संबंध में है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

9. श्री ठाकुर ने आगे तर्क प्रस्तुत किया कि राज्य ने पहले ही मू.नि. 54, 54-ए और 54-बी के प्रावधानों के तहत दिनांक 6-9-2002 के आदेश द्वारा यह निर्णय लिया है कि याचिकाकर्ता काम नहीं तो वेतन नहीं के सिद्धांत पर वेतन प्राप्त करने का हकदार नहीं होगा। जाँच पूरी करने में देरी किसी दुर्भावना का संकेत नहीं देती, क्योंकि अतिरिक्त समय प्रदान करने के लिए अधिकरण में आवेदन दिया गया था और इसे स्वीकृति प्रदान की गई थी। याचिकाकर्ता सरकार के सचिव द्वारा पीएससी के पास अनुमोदन हेतु अनुशंसा भेजते समय या पीएससी द्वारा अनुशंसा स्वीकृत करते समय किसी सुनवाई के अवसर का हकदार नहीं है। पीएससी की राय की प्रति देना आवश्यक नहीं है और याचिकाकर्ता को ऐसी राय की प्रति प्राप्त करने का कोई अधिकार नहीं है। याचिकाकर्ता द्वारा दावा किया गया मू.नि. 56 वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता, क्योंकि याचिकाकर्ता को

[2] (2007) 4SCC785

मू.नि. 56 के प्रावधानों के तहत अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त नहीं किया गया है। वर्तमान मामले में अनिवार्य सेवानिवृत्ति एक प्रमुख दंड के रूप में लागू की गई थी, जैसा कि नियम, 1966 के नियम 10 (vii) में निहित है। अतः पूर्व में तीन माह का नोटिस देने का प्रश्न ही नहीं उठता। याचिकाकर्ता कुछ दस्तावेजों या सामग्रियों के प्रस्तुतिकरण द्वारा दुर्भावना सिद्ध नहीं कर पाया है।

10. मैंने याचिकाकर्ता श्री सोनी (व्यक्तिगत रूप से उपस्थित) तथा उत्तरवादीयों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ताओं की अभिवचनों को सुना है, तथा याचिका पत्र और उसमें संलग्न दस्तावेजों का अवलोकन किया ।

11. मामले की तथ्यात्मक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए तथा दोनों पक्षों की तर्कों को सुनने के उपरांत, मेरी यह सुविचारित राय है कि इन याचिकाओं में निहित विवाद के निम्नलिखित बिंदुओं पर विचार एवं निर्णय की आवश्यकता है:

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

- प्रथम: क्या याचिकाकर्ता द्वितीय कारण बताओ नोटिस के चरण में दस्तावेजों की प्राप्ति का हकदार है?

- द्वितीय: क्या याचिकाकर्ता सरकार के सचिव द्वारा पी.एस.सी. को अनुशंसा भेजे जाने से पूर्व अथवा पी.एस.सी. द्वारा अनुशंसा का अनुमोदन किए जाने से पूर्व सुनवाई के अवसर का हकदार है?

- तृतीय: क्या दोषी कर्मचारी पी.एस.सी. की राय की प्रति प्राप्त करने का हकदार है?

- चतुर्थ: क्या याचिकाकर्ता उस अवधि के लिए पूर्ण वेतन एवं भत्तों की प्राप्ति का हकदार है जब उसे 1996 तक प्रारंभिक रूप से सेवा से बर्खास्त किया गया था तथा जब तक सेवा से बर्खास्त करने की आदेश को अभिखंडित करके उसे पुनर्बहाल किया गया और मामला जाँच प्रतिवेदन की प्रति उपलब्ध कराए जाने तथा द्वितीय कारण बताओ नोटिस

जारी किए जाने के पश्चात् आगे की कार्यवाही हेतु पुनः प्रेषित किया गया?

12. यह सुस्थापित विधि है कि जाँच आयोजित करने से पूर्व प्रथम कारण बताओ नोटिस का उद्देश्य दोषी कर्मचारी के विरुद्ध लगाए गए आरोपों की जाँच करना होता है। याचिकाकर्ता उन सभी दस्तावेजों को प्राप्त करने का हकदार है, जिन पर जाँच अधिकारी ने जाँच में भरोसा किया था। याचिकाकर्ता की यह कोई शिकायत नहीं है कि जाँच के दौरान उसे सभी दस्तावेज उपलब्ध नहीं कराए गए थे। दोषी कर्मचारी को उसके द्वारा अनुरोधित सभी दस्तावेज उपलब्ध कराए गए हैं। याचिकाकर्ता द्वितीय कारण बताओ नोटिस के चरण में किसी भी दस्तावेज का हकदार नहीं है, क्योंकि यह केवल दंड लगाने के प्रश्न से संबंधित है। एक बार जब दोषी कर्मचारी के विरुद्ध जाँच में आरोप सिद्ध पाए जाते हैं, तो दंड पर विचार करते समय दस्तावेजों की आपूर्ति का प्रश्न ही नहीं उठता। अतः याचिकाकर्ता की यह शिकायत कि द्वितीय कारण बताओ नोटिस के पश्चात् उसे दस्तावेज उपलब्ध नहीं कराए गए, निरस्त किए जाने योग्य है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

13. सर्वोच्च न्यायालय के एक संविधान पीठ ने **मैनेजिंग डायरेक्टर, ईसीआईएल, हैदराबाद & अन्य बनाम बी. करुणाकर एवं अन्य**[3] के मामले में निम्नलिखित सिद्धांत अवधारित किया :

> **"25.** जहाँ एक ओर प्रतिवेदन में दिए गए निष्कर्षों के विरुद्ध प्रतिनिधित्व करने का अधिकार जाँच के प्रथम चरण में उपलब्ध उचित अवसर का भाग है, अर्थात् इससे पूर्व कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी प्रतिवेदन के निष्कर्षों पर विचार करे, वहीं प्रस्तावित दंड के विरुद्ध कारण बताने का अधिकार द्वितीय चरण से संबंधित है, जब अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने प्रतिवेदन के निष्कर्षों पर विचार कर लिया है और कर्मचारी के दोष के संबंध में निष्कर्ष पर पहुँच गया है तथा उसके निष्कर्षों के आधार पर दंड देने का प्रस्ताव करता है। प्रथम अधिकार निर्दोष सिद्ध करने का अधिकार है। द्वितीय अधिकार यह अभिवंदन करने का है कि कोई दंड न दिया

[3] (1993) 4 SCC 727

जाए अथवा कम दंड दिया जाए, भले ही दोष के संबंध में निष्कर्ष स्वीकार किया गया हो। यह द्वितीय अधिकार, जो द्वितीय चरण में प्रयोग किया जाने योग्य है, को बयालीसवें संशोधन द्वारा समाप्त कर दिया गया था।"

14. बाद में, **उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम अभय किशोर मस्ता**[4] के मामले में इसे और सीमित कर दिया गया, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि "मोहम्मद रमजान खान के मामले में दिए गए निर्णय की व्याख्या इस न्यायालय की एक संविधान पीठ द्वारा मैनेजिंग डायरेक्टर, ईसीआईएल बनाम बी. करुणाकर में की गई है। यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जहाँ दंड का आदेश रमजान खान के निर्णय की तिथि से पहले बनाया गया था, वहाँ जाँच प्रतिवेदन की अनुपलब्धता जाँच को दोषपूर्ण नहीं बनाती।"

15. याचिकाकर्ता, लोक सेवा आयोग (पी.एस.सी.) द्वारा दी गई सलाह की प्रति प्राप्त करने का हकदार नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय ने **टी.वी. पटेल (उपरोक्त)** के मामले में अभिनिर्धारित किया कि यदि संबंधित नियमों में इसका प्रावधान नहीं है तो ऐसी प्रति उपलब्ध कराना आवश्यक नहीं है। कंडिका 25 इस प्रकार है :

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

> **"25.** इस न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा श्रीवास्तव मामले में स्थापित विधि के आलोक में, हम मानते हैं कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 320 (3) (सी) के प्रावधान अनिवार्य नहीं हैं और वे लोक सेवक को कोई अधिकार प्रदान नहीं करते हैं, जिससे कि परामर्श का अभाव या परामर्श प्रक्रिया में कोई अनियमितता या यूपीएससी द्वारा दी गई सलाह की प्रति (यदि कोई हो) उपलब्ध न कराना, एक दोषी सरकारी सेवक को विधि के न्यायालय में कार्रवाई का कारण नहीं देता है।"

16. **एस.के. सिंह बनाम सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया एवं अन्य**[5] के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित सिद्धांत अवधारित किया:

---

[4] (1993) 1 SCC 336
[5] (1996) 6 SCC 415

"**4.** याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री खंडूजा ने तर्क दिया कि चूंकि इस न्यायालय ने यह सिद्धांत स्थापित किया है कि जाँच प्रतिवेदन की प्रति की आपूर्ति एक सक्षम अधिकारी द्वारा अनुशासनात्मक कार्रवाई करने की एक पूर्व शर्त है, इसलिए उचित तरीका मामले को अनुशासनात्मक प्राधिकारी के पास वापस भेजना होता। सामान्य रूप से इस मार्ग पर कोई विवाद नहीं है, क्योंकि इस न्यायालय ने यह सिद्धांत स्थापित किया था कि दोषी कर्मचारी को प्रस्तावित कार्रवाई या दंड के विरुद्ध प्रतिनिधित्व करने में सक्षम बनाने के लिए प्रतिवेदन की प्रति उपलब्ध करानी आवश्यक है और उसके बाद प्राधिकारी द्वारा याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत स्पष्टीकरण पर विचार करना आवश्यक है तत्पश्चात दंड की मात्रा पर निर्णय लेना आवश्यक है। इस मामले में, यद्यपि प्रतिवेदन की प्रति उपलब्ध नहीं कराई गई थी, लेकिन विद्वान एकल न्यायाधीश तथा युगल पीठ द्वारा उनसे यह पूछा गया कि प्रतिवेदन की अनुपलब्धता के कारण उन्हें क्या हानि हुई है; किंतु वे जाँच प्रतिवेदन की अनुपलब्धता के कारण हुई हानि के संबंध में विद्वान न्यायाधीशों को संतुष्ट नहीं कर पाए। तथ्यों के आधार पर, हम पाते हैं कि उच्च न्यायालय द्वारा लिए गए निर्णय में कोई अवैधता नहीं है।"

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

17. **महाराष्ट्र स्टेट सीड्स कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम हरिप्रसाद द्रुपदराव जाधव एवं अन्य**[6] के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अनुसार अभिनिर्धारित किया:

"**23.** प्रथम उत्तरवादी एक विश्वास के पद पर आसीन था। उसने किसानों को बीज वितरित किए। उनसे एक बड़ी राशि एकत्र की। उसने न केवल एक बड़ी राशि का हेराफेरी किया बल्कि कुछ बीजों के बोरों का भी दुरुपयोग किया। उपरोक्त

[6] (2006) 3 SCC 690

परिस्थितियों में उच्च न्यायालय का दंड की मात्रा में हस्तक्षेप करना अनुचित था। अब यह सुस्थापित है कि अनुशासनात्मक कार्यवाहियों के मामले में उच्च न्यायालय एक सीमित शक्ति का प्रयोग करता है। (देखें: **गवर्नमेंट ऑफ ए.पी. बनाम मोहम्मद नसरुल्लाह खान**, **एल.के. वर्मा बनाम एच.एम.टी. लिमिटेड**, **कर्नाटक बैंक लिमिटेड बनाम ए.एल. मोहन राव** और **होम्बे गौड़ा एजुकेशनल ट्रस्ट बनाम कर्नाटक राज्य**।)

18. **ए. सुधाकर बनाम पोस्टमास्टर जनरल, हैदराबाद एवं अन्य**[7] के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अनुसार अभिनिर्धारित किया:

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

"26. यह सुस्थापित है कि प्राकृतिक न्याय के ये सिद्धांत सन्निहित सिद्धांत नहीं हैं। इस न्यायालय के **खेम चंद बनाम भारत संघ** के निर्णय के आलोक में संविधान के अनुच्छेद 311(2) में निहित आवश्यकताएँ प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का हिस्सा मानी गई हैं। उपरोक्त स्थिति में न्यायालयों को यह देखना आवश्यक है कि किसी दिए गए मामले में इन सिद्धांतों में से किसी का पालन न करने से न्याय से वंचित होने की स्थिति उत्पन्न हुई है या नहीं। यदि प्रक्रिया का पर्याप्त अनुपालन हुआ है, तो न्यायालय हस्तक्षेप नहीं कर सकता। (देखें: उत्तर प्रदेश राज्य बनाम ओम प्रकाश गुप्ता और कुलदीप सिंह बनाम पुलिस आयुक्त)"

19. **मोहम्मद सरताज एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य**[8] के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 18 में निम्नलिखित अनुसार अभिनिर्धारित किया:

"18. अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय बनाम मंसूर अली खान में इस न्यायालय ने इस प्रश्न पर विचार किया कि

[7] (2006) 4 SCC 348
[8] (2006) 2 SCC 315

क्या मामले के तथ्यों के आधार पर कर्मचारी प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का आह्वान कर सकता है और क्या यह एक ऐसा मामला है जहाँ यदि नोटिस दिया गया होता तो भी परिणाम अलग नहीं होता, और क्या यह कहा जा सकता है कि उसे कोई हानि नहीं हुई, यदि स्वीकृत या सिद्ध तथ्यों के आधार पर अवसर प्रदान करने से कोई अंतर नहीं पड़ता। न्यायालय ने **एम.सी. मेहता बनाम भारत संघ**, **एस.एल. कपूर** मामले में निर्धारित अपवादों और **के.एल. त्रिपाठी बनाम स्टेट बैंक ऑफ इंडिया** के निर्णयों का उल्लेख किया, जहाँ यह अभिनिर्धारित किया गया कि केवल प्राकृतिक न्याय का उल्लंघन ही नहीं, बल्कि वास्तविक हानि (नोटिस जारी न करने के अलावा) सिद्ध करनी होगी। न्यायालय ने **स्टेट बैंक ऑफ पटियाला बनाम एस.के. शर्मा** और **राजेंद्र सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य** के मामलों का भी अवलंब लिया, जहाँ यह सिद्धांत निर्धारित किया गया कि शिकायतकर्ता को कुछ वास्तविक हानि होनी चाहिए। प्राकृतिक न्याय का केवल तकनीकी उल्लंघन जैसी कोई चीज नहीं होती। न्यायालय ने इस सिद्धांत को मंजूरी दी और उसे ध्यान में रखते हुए कर्मचारी के मामले की जाँच की। **विवेकानंद सेठी बनाम चेयरमैन, जे एंड के बैंक लिमिटेड** में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन वहाँ प्राप्त तथ्यात्मक स्थिति को ध्यान में रखते हुए आवश्यक है। इसे एक कठोर सूत्र में नहीं रखा जा सकता। इसके बिना लागू नहीं किया जा सकता मामले के सुसंगत तथ्यों और परिस्थितियों को संदर्भित किये बिना । प्राकृतिक न्याय का सिद्धांत, यह स्पष्ट है, कोई अनियंत्रित घोड़ा नहीं है। जब तथ्य स्वीकार किए जाते हैं, तो जाँच एक खाली औपचारिकता होगी। यहाँ तक कि विबंध (estoppel) का

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

सिद्धांत भी लागू होगा। एक अन्य ताज़ा निर्णय उत्तर प्रदेश राज्य बनाम नीरज अवस्थी में, इस तर्क पर विचार करते हुए कि कर्मचारियों की सेवा समाप्त करने से पूर्व प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत की अनदेखी की गई थी और इसलिए कर्मचारियों की सेवा समाप्त करने का आदेश विधि के अनुसार अवैध था, इस न्यायालय ने प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों और उस सीमा एवं परिस्थितियों पर विचार किया है जिनमें वे लागू होते हैं। इस न्यायालय ने नीरज अवस्थी मामले में पाया कि यदि श्रमिकों की सेवाएँ उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम द्वारा शासित हैं, तो वे उस विधि के तहत संरक्षित हैं। उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद नियमों के नियम 42 और 43 में यह निर्धारित किया गया है कि किसी भी छंटनी को प्रभावी करने से पहले संबंधित कर्मचारी एक महीने का नोटिस या उसके बदले एक महीने का वेतन और प्रतिफल के रूप में सेवा के प्रत्येक पूर्ण वर्ष के लिए 15 दिनों का वेतन प्राप्त करने के हकदार होंगे। यदि छंटनी औद्योगिक विवाद अधिनियम के तहत की जानी है, तो प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करने का प्रश्न ही नहीं उठता। प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत केवल तभी लागू होंगे जब कुछ व्यक्तियों की सेवाएँ एक दंडात्मक उपाय के रूप में समाप्त की जाती हैं या उससे कोई कलंक जुड़ा होता है। इस सिद्धांत को लागू करते हुए, यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि वर्तमान मामले में अपीलकर्ताओं की सेवा समाप्ति एक दंडात्मक उपाय के रूप में नहीं किया गया था बल्कि उन्हें इस कारण से हटाया गया था कि वे योग्य नहीं थे और नियुक्ति के लिए आवश्यक योग्यताएँ नहीं रखते थे।"

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

20. **अशोक कुमार शंकर बनाम भारत संघ एवं अन्य**[9] के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अनुसार अभिनिर्धारित किया:

> **"26.** यह हमें इस प्रश्न की ओर ले जाता है कि क्या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करना आवश्यक था। इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि **ऑडी अल्टरम पार्टम** प्राकृतिक न्याय के मूल स्तंभों में से एक है, जिसका अर्थ है कि किसी को भी बिना सुने दोषी नहीं ठहराया जाना चाहिए। हालाँकि, जब भी संभव हो, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का पालन किया जाना चाहिए। सामान्यतः इस प्रकृति के मामले में इसका पालन किया जाना चाहिए। आवश्यक स्थिति में, विज़िटर (Visitor) उस कर्मचारी को नोटिस जारी कर सकता है जो अंतिम आदेश से प्रभावित हो सकता है। उसे मौखिक सुनवाई नहीं दी जा सकती, लेकिन उसे लिखित में अभ्यावेदन देने की अनुमति दी जा सकती है।"
>
> **"27.** यह भी सुस्थापित है कि इसे कोई कठोर सूत्र नहीं बनाया जा सकता। यह तब तक लागू नहीं किया जा सकता जब तक कि किसी विशिष्ट मामले में हानि न दिखाई गई हो। यह आवश्यक नहीं है जहाँ यह एक व्यर्थ कवायद साबित होगी।"
>
> **"28.** एक विधिक न्यायालय बेकार औपचारिकताओं के पालन पर जोर नहीं देता। यह ऐसा कोई निर्देश नहीं देगा जहाँ परिणाम समान ही रहने वाला हो, चाहे वह प्रचलित तथ्यात्मक स्थिति के संदर्भ में हो या विधिक परिणामों के संदर्भ में। इसके अलावा इस मामले में, अपीलकर्ता का चयन अवैध था। वह निर्धारित तिथि पर योग्य नहीं था। नियुक्ति

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

[9] (2007) 4 SCC 54

हेतु विचारणीय होने के लिए अयोग्य होने के कारण, उसे सुनवाई का अवसर देना एक व्यर्थ कवायद होती।"

21. **श्रवण कुमार झा एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एवं अन्य**[10] में, सर्वोच्च न्यायालय ने, जहाँ शिक्षकों की नियुक्तियाँ उन्हें सुनवाई का अवसर दिए बिना निरस्त कर दी गई थीं, में निम्नलिखित अनुसार अभिनिर्धारित किया:

"इन सभी प्रश्नों में जाने की आवश्यकता नहीं है। इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के तहत हमारा विचार है कि अपीलकर्ताओं को उनकी नियुक्तियाँ निरस्त करने से पहले सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए था। निस्संदेह, उन्हें ऐसा कोई अवसर प्रदान नहीं किया गया। यह सुस्थापित है कि प्राकृतिक न्याय के नियमों का पालन किए बिना अपीलकर्ताओं के लिए हानिकारक कोई आदेश पारित नहीं किया जा सकता।"

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

22. **डी.के. यादव बनाम जे.एम.ए. इंडस्ट्रीज लिमिटेड एवं अन्य**[11] में, सर्वोच्च न्यायालय ने सुनवाई के अवसर की अवधारणा पर विचार करते हुए निम्नलिखित अनुसार अभिनिर्धारित किया:

"प्रत्येक मामले में ध्यान रखने योग्य मुख्य बिंदु यह है कि क्या संबंधित व्यक्ति को अपना मामला प्रस्तुत करने का उचित अवसर मिलना चाहिए और प्राधिकारी को निष्पक्ष, न्यायसंगत, उचित और तटस्थ रूप से कार्य करना चाहिए। दूसरे शब्दों में, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का अनुप्रयोग, जिसके अनुसार किसी को बिना सुने दोषी नहीं ठहराया जाना चाहिए, का उद्देश्य प्राधिकारी को मनमाने ढंग से कार्य करने से रोकना है जो संबंधित व्यक्ति के अधिकारों को प्रभावित करता हो। विधि का एक मौलिक नियम है कि

[10] AIR 1991 SC 310
[11] (1993) 3 SCC 259

कोई भी निर्णय, जो किसी व्यक्ति के अधिकार को प्रभावित करे, बिना उसे मामले की जानकारी दिए और अपना पक्ष रखने का अवसर प्रदान किए, नहीं लिया जाना चाहिए। दिवानी परिणामों वाला कोई आदेश प्राकृतिक न्याय के नियमों के अनुरूप होना चाहिए। अतः कार्यवाही में निष्पक्षता अपेक्षा करती है कि अपनाई गई प्रक्रिया न्यायसंगत, निष्पक्ष और उचित हो। शक्ति के प्रयोग का तरीका और इसका प्रभावित व्यक्ति के अधिकारों पर प्रभाव प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप होना चाहिए।"

23. उक्त सिद्धांत की पुष्टि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **बासुदेव तिवारी बनाम सिदो कान्हू विश्वविद्यालय एवं अन्य**[12] के मामले में की गई है, जहाँ अभिनिर्धारित किया गया कि:

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

"यह सिद्धांत स्थापित है कि मनमानी न होना अनुच्छेद 14 का अनिवार्य पहलू है जो अनुच्छेद 14 द्वारा शासित राज्य कार्रवाई के संपूर्ण क्षेत्र को नियंत्रित करता है। इसके एक और परिणाम के रूप में यह स्थापित हो गया है कि प्राकृतिक न्याय का ऑडी अल्टरम पार्टम पहलू भी अनुच्छेद 14 की एक आवश्यकता है, क्योंकि प्राकृतिक न्याय मनमानी का विलोम है। लोक नियोजन के क्षेत्र में, यह सुस्थापित है कि नियोक्ता द्वारा कर्मचारी के विरुद्ध की गई कोई भी कार्रवाई निष्पक्ष, न्यायसंगत और उचित होनी चाहिए, जो निष्पक्ष व्यवहार के घटक हैं। किसी कर्मचारी की सेवाएँ समाप्त करने की पूर्ण शक्ति प्रदान करना निष्पक्ष, न्यायसंगत और उचित व्यवहार के विपरीत है।"

24. इसके अलावा, **केनरा बैंक एवं अन्य बनाम देवाशीष दास एवं अन्य**[13] में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अनुसार अभिनिर्धारित किया:

---

[12] AIR 1998 SC 3261
[13] (2003) 4 SCC 557

"प्रथम और सर्वप्रमुख सिद्धांत वह है जिसे सामान्यतः ऑडी अल्टरम पार्टम नियम के रूप में जाना जाता है। यह कहता है कि किसी को भी बिना सुने दोषी नहीं ठहराया जाना चाहिए। नोटिस इस सिद्धांत का प्रथम अंग है। यह सटीक और स्पष्ट होना चाहिए। इससे पक्ष को निश्चित रूप से उस मामले से अवगत कराना चाहिए जिसका उसे सामना करना है। इस उद्देश्य के लिए दिया गया समय पर्याप्त होना चाहिए ताकि वह अपना प्रतिनिधित्व कर सके। इस प्रकार के नोटिस और ऐसे उचित अवसर के अभाव में, पारित आदेश पूर्णतः दोषपूर्ण हो जाता है। इस प्रकार, यह अनिवार्य है कि किसी भी प्रतिकूल आदेश पारित किए जाने से पहले पक्ष को मामले की सूचना दी जानी चाहिए। यह एक स्वीकृत निष्पक्षता का नियम है और प्राकृतिक न्याय के सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांतों में से एक है। यह एक स्वीकृत निष्पक्षता का नियम है। इस अवधारणा ने समय के साथ महत्व और विभिन्न आयाम प्राप्त किए हैं।"

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

25. सर्वोच्च न्यायालय ने **विवेकानंद सेठी बनाम चेयरमैन, जम्मू-कश्मीर बैंक लिमिटेड एवं अन्य**[14] के मामले में निम्नलिखित अनुसार अभिनिर्धारित किया:

"**22.** प्राकृतिक न्याय का सिद्धांत, यह स्पष्ट है, कोई अनियंत्रित घोड़ा नहीं है। जब तथ्य स्वीकार किए जाते हैं, तो जाँच एक खाली औपचारिकता होगी। यहाँ तक कि विबंध का सिद्धांत भी लागू होगा। (देखें: **गुरजीवन गरेवाल (डॉ.) बनाम डॉ. सुमित्रा दाश**)। प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन वहाँ प्राप्त तथ्यात्मक स्थिति को ध्यान में रखते हुए आवश्यक है। इसे एक कठोर सूत्र में नहीं रखा जा सकता। इसके बिना लागू नहीं किया जा सकता मामले के प्रासंगिक तथ्यों और परिस्थितियों को संदर्भित किये बिना ।

[14] (2005) 5 SCC 337

(देखें: **पंजाब राज्य बनाम जगीर सिंह** और **कर्नाटक एसआरटीसी बनाम एस.जी. कोट्टूरप्पा**)।"

26. उपरोक्त उद्धृत सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर विचार करने के पश्चात्, इस न्यायालय ने **कु. पूनम एवं अन्य बनाम छत्तीसगढ़ राज्य एवं अन्य**[15] के मामले में निम्नलिखित अनुसार अभिनिर्धारित किया:

> **"21.** मामले के तथ्यों पर सुस्थापित विधि सिद्धांतों को लागू करते हुए, एक सामान्य सूत्र यह है कि प्राकृतिक न्याय का सिद्धांत कोई अनियंत्रित घोड़ा नहीं है। प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन वहाँ प्राप्त तथ्यात्मक स्थिति को ध्यान में रखते हुए आवश्यक है। इस प्रकार, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन उन मामलों में आवश्यक नहीं हो सकता जहाँ तथ्य स्वीकार किए गए हैं। दूसरे, जहाँ बड़े पैमाने पर की गई अनियमितता के कारण चयन को निरस्त करने या सामूहिक निरस्तीकरण की स्थिति में सुनवाई का अवसर प्रदान करना व्यावहारिक रूप से असंभव या अत्यंत असंभाव्य है। तीसरे, सुनवाई का अवसर प्रदान करने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूर्ण नहीं होगा।"

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

27. याचिकाकर्ता ने शिकायत की है कि उसे प्रत्येक चरण पर सुनवाई का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए था। सुनवाई के अवसर के संबंध में विधि स्पष्ट है। यदि दोषी कर्मचारी को कोई **हानि** नहीं हुई है या सुनवाई का अवसर प्रदान करने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूर्ण नहीं होगा, तो प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन आवश्यक नहीं है। {देखें: **विवेकानंद सेठी (उपरोक्त)**}।

28. याचिकाकर्ता के इस तर्क में कोई **दम नहीं** है कि चूंकि द्वितीय कारण बताओ नोटिस के चरण पर याचिकाकर्ता को दस्तावेज उपलब्ध **नहीं** कराए गए, इसलिए लगाया गया दंड **अमान्य** है।

---

[15] 2008 (2) CGLJ 366

29. यह सुस्थापित विधि है कि द्वितीय कारण बताओ नोटिस याचिकाकर्ता की निर्दोषता या दोष के निष्कर्ष के संबंध में नहीं, बल्कि **दंड लगाने** के संबंध में होता है। यहाँ तक कि अन्यथा भी, याचिकाकर्ता यह सिद्ध करने में **विफल** रहा है कि दस्तावेजों की अनुपलब्धता के कारण उसे कोई **हानि** हुई है। इस प्रकार, आदेश उस आधार पर भी **अमान्य** नहीं है।

30. पीएससी को अनुशंसा भेजने के चरण पर या पीएससी द्वारा अनुशंसा के अनुमोदन से पूर्व सुनवाई का अवसर प्रदान करना भी **उचित नहीं** है, जबकि याचिकाकर्ता को विभागीय जाँच में **पर्याप्त अवसर** प्राप्त हुआ था और उसने तत्पश्चात द्वितीय कारण बताओ नोटिस को अपना जवाब प्रस्तुत किया था।

31. पीएससी की राय की प्रति याचिकाकर्ता को उपलब्ध न कराने के संबंध में, यह माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सुस्थापित किया जा चुका है कि दंड का आदेश पारित करने से पूर्व दोषी कर्मचारी को राय की प्रति प्रदाय करना आवश्यक नहीं है। {देखें: टी.वी. पटेल (उपरोक्त)} ।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

32. याचिकाकर्ता का **दंड लगाने से पूर्व तीन माह का नोटिस** जारी करने के संबंध में आगे का तर्क इस संदर्भ में है कि वर्तमान मामले में **अनिवार्य सेवानिवृत्ति** का दंड मू.नि. 56 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए **नहीं** लगाया गया है। यह कार्रवाई **नियम, 1966 के नियम 10 (vii)** के तहत की गई है, जो निम्नलिखित है:

> **"10. दंड** — अच्छे और पर्याप्त कारणों से तथा यहाँ निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार, एक सरकारी सेवक पर निम्नलिखित दंड लगाए जा सकते हैं, अर्थात् :—
>
> **दीर्घ शास्ती :**
>
> ********** ******* *****
> ********** ****** ******
> ********** ******* ******
>
> **वृध्द शास्ती :**
>
> ********** ******* *****
> ********** ****** ******
> ********** ******* ******
>
> **(vii) अनिवार्य सेवानिवृत्ति ;**

********** ******* *****
********** ****** ******
********** ******* ******

33. उपरोक्त के आधार पर, अनिवार्य सेवानिवृत्ति का दंड लगाने से पूर्व किसी नोटिस की आवश्यकता नहीं है।

34. याचिकाकर्ता का तर्क है कि वह दिनांक 21-12-1992 से 15-12-1996 की अवधि के लिए वेतन एवं भत्तों का भुगतान प्राप्त करने का **हकदार** है, किंतु उसे यह राशि नहीं दी गई, जो अवैध और मनमाना है।

35. इस संबंध में, कोई राय दिए बिना, यह अवधारित किया जाता है कि दिनांक 6-9-2002 के आदेश, जो बाद में वेतन एवं भत्तों से इनकार करते हुए पारित किया गया था, पर गुण दोष के आधार पर कोई आदेश नहीं दिया जा सकता, क्योंकि याचिकाकर्ता द्वारा किसी भी याचिका में इस आदेश को **चुनौती नहीं दी गई** है। हालाँकि, याचिकाकर्ता को यह **स्वतंत्रता** प्रदान की जाती है कि वह विधि के अनुसार, यदि परामर्श दिया जाता है, तो इस आदेश को चुनौती दे सकता है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

36. उपरोक्त कारणों से, दोनों रिट याचिकाएँ खारिज की जाने योग्य हैं और तदनुसार, खारिज की जाती हैं। **व्यय के** संबंध में कोई आदंश नहीं दिया जा रहा है।

सही/-
श्री सतीश के. अग्निहोत्री
न्यायाधीश

"अस्वीकरणः हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुवाद पक्षकारों के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा । **समस्त कार्यालयीन एवं व्यवहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेजी स्वरुप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।"**

Translated By Yashpal Singh